INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL

ISSN: 2230-7850
IMPACT FACTOR : 4.1625(UIF)
VOLUME - 6 | ISSUE - 12 | JANUARY – 2017

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यः आर्थिक नीतियाँ तथा प्रशासनिक ढ़ाँचा (1757–1857)

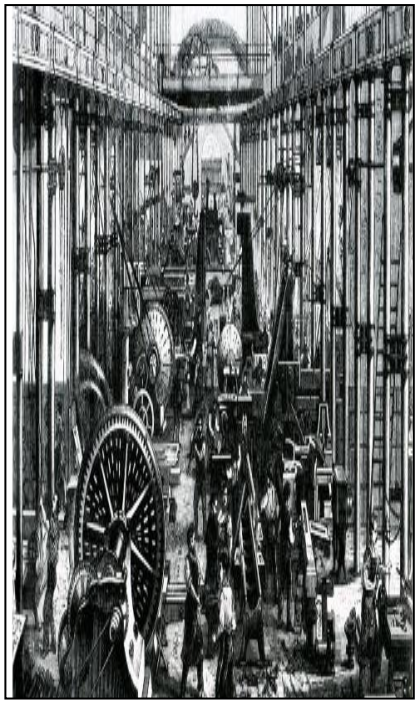

प्रेम शंकर राय
एम० ए० (इतिहास), बी० एड०
आदर्श नगर, फुलवारीशरीफ, पटना.

सार

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सीमाएँ परिवर्तित और विकसित होती रही तथा इसके साथ ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद का चरित्र भी ब्रिटेन में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों के साथ बदलता रहा। इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों का प्रभाव भारत में प्रशासन की व्यवस्था पर भी पड़ा। कम्पनी के अधिन प्रशासनिक विकास की कहानी साम्राज्यवाद के चरित्र एवं राज्य के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन के साथ प्रशासन के तालमेल को स्थापित करने की कहानी है।

शब्द संकेतः– प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, ब्रिटिश.

प्रस्तावना

भारत के विशाल साम्राज्य को हथिया लेने के बाद इस पर नियंत्रण रखने और शासन चलाने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी को उपयुक्त तरीके ईजाद करने पड़े। 1757 से 1857 की लम्बी अवधि के दौरन कंपनी की प्रशासनिक नीति अक्सर बदलती रही। फिर भी इसने अपना मुख्य लक्ष्य कभी आँखों से ओझल नहीं होने दिया। वे लक्ष्य थे– कंपनी के मुनाफे में बढ़ोत्तरी, भारत पर अधिकार को ब्रिटेन के लिए फायदेमंद बनाना तथा भारत पर ब्रिटिश पकड़ को कायम रखकर उसे सुदृढ़ बनाना। इसके अतिरिक्त अन्य लक्ष्य इन उद्देश्यों की मदद के लिए थे। भारत सरकार का प्रशासनिक ढांचा इन्हीं लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बनाया और विकसित किया गया था। इस मामले में मुख्य जोर कानून और व्यवस्था को बनाए रखने पर दिया जाता था ताकि बिना व्यवधान के भारत के साथ व्यापार किया जा सके और देश के संसाधनों का दोहन किया जा सके।

1. प्रशासनिक प्रणाली का जन्मः–

भारत से व्यापार करने के लिए कम्पनी को 31 दिसम्बर 1600 ई. को चार्टर प्राप्त हुआ, इस कम्पनी ने भारत से व्यापार के लिए देश के विभिन्न भागों में अपनी बस्तियाँ, जिन्हें फैक्टरी भी कहा जाता था, को स्थापित किया 1613 में सूरज की, 1640 में फोर्ट सेंट जॉर्ज (मद्रास) की तथा 1698 में फोर्ट विलियम की फैक्टरी स्थापित हुई। 1679 में इंगलैण्ड के राजा चार्ल्स ने बम्बई का द्वीप कम्पनी को दे दिया इन बस्तियों का आन्तरिक

प्रशासन एक अध्यक्ष और बोर्ड के द्वारा किया जाता था। अध्यक्ष के निवास के कारण ही मुख्य बस्ती को प्रेसीडेंसी टॉउन कहा गया तथा एक प्रेसीडेंसी टॉउन से जुड़े सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रेसीडेंसी का नाम दिया गया। आगे चलकर मद्रास, बंगाल तथा बम्बई की इन प्रेसीडेंसियों को केन्द्र बनाकर ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का क्षेत्र विस्तार हुआ।

बंगाल की प्रेसीडेंसी का विकास 1757 की प्लासी की लड़ाई से हुआ। 1765 में इलाहाबाद की सन्धि द्वारा बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी पाकर कम्पनी ने अपने अधिकार को कानूनी रूप दिया तथा वारेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल पर कम्पनी के सीधे नियंत्रण की स्थापना द्वेध शासन का अन्त करके कर दी। 1775 में अवध से बनारस की जमींदारी को कम्पनी के नियंत्रण में ले लिया गया। 1801–03 के मध्य में इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, आजमगढ़ का कुछ हिस्सा गोरखपुर, बरेली, मुरादाबाद, बिजनौर, बदायूँ और शाहजहाँपुर अवध से लेकर इस प्रेसीडेंसी में मिला लिए गए। मराठों को युद्ध में पराजित करके इटावा, मैनपुरो, आगरा, अलीगढ़, बुलन्दशहर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, दिल्ली तथा मथुरा का क्षेत्र प्रेसीडेंसी में जोड़ दिया गया। 1805 में उड़ीसा के तटीय क्षेत्र कटक, बालासोर, पुरी प्रेसीडेंसी का हिस्सा बन गए। असम, तेन सरिम तथा अराकान का क्षेत्र प्रथम बर्मा युद्ध से प्राप्त किया गया। 1836 तक इस विशाल क्षेत्र को बंगाल की प्रेसीडेंसी तथा उत्तर–पश्चिम प्रान्त को दो इकाइयों में विभक्त कर दिया गया 1856 में अवध का विलय ब्रिटिश साम्राज्य में हुआ आरंभ से उसे अलग प्रदेश के रूप में रखा गया, किन्तु बीस वर्ष बाद उत्तर–पश्चिमी प्रान्त से जोड़ दिया गया।

बम्बई प्रेसीडेंसी का विस्तार मुख्यतः मराठा राज्य की कीमत पर हुआ। प्रथम मराठा युद्ध से साल्सेट पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया था। वेलेजली के समय में बड़ौदा राज्य से भड़ौच, कैरा तथा अहमदाबाद का प्रदेश प्राप्त कर लिया गया। 1818 में पेशवा के राज्य का अन्त करके थाना, खानदेश, नासिक, अहमदनगर का कुछ भाग, पूना, शोलापुर, कोलाबा एवं रत्नागिरि पर कम्पनी ने अधिकार कर लिया था। 1848 में सतारा राज्य का भी विलय हो गया, 1843 में सिन्ध को भी जीतकर बम्बई प्रेसीडेंसी मे मिलाया गया।

मद्रास प्रेसीडेंसी कर्नाटक के नवाब से प्राप्त भू–भाग से आरंभ हुई। 1765 तक उत्तरी सरकार के प्रदेश मुगल सम्राट व निजाम से प्राप्त कर लिए गए। इनमें गंजाम, विशाखापत्तनम तथा गोदावरी–कृष्ण के मध्य का क्षेत्र सम्मिलित था। 1790 के दशक में मैसूर राज्य की कीमत पर प्रेसीडेंसी का और अधिक विस्तार हुआ। अरकाट, तंजौर, त्रिचुरापल्ली, मदुरै, कोयम्बटूर, नीलगिरि, तिनावेली और सेलम के क्षेत्र कम्पनी के अधिकार में आ गये। कोडप्पा तथ नेल्लोर पर भी अधिकार कर लिया गया। बेतेजली के समय में मैसूर राज्य का भी अन्त हो गया।

पंजाब का प्रदेश लॉड डलहौजी के द्वारा जीतकर अंग्रेजो राज्य में मिला लिया गया इससे पहले यमुना नदी के दक्षिण तटीय प्रदेश गुड़गाँव, रोहतक, करनाल, हिसार, फिरोजपुर को 1803 में ही मराठों से जीत लिया गया था। 1845–46 के प्रथम सिख युद्ध द्वारा लुधियाना, फिरोजपुर, अम्बाला, जालंधर, होशियारपुर और कांगड़ा को प्राप्त किया गया था । पंजाब राज्य का अन्त करने से पेशावर, कोहाट, हजारा, जम्मू, डेरा इस्माइल खाँ, डेरा गाजी खाँ, मुल्तान, मोंट गुमरी, लाहौर, अमृतसर, गुरदासपुर, गुजरात, गुजरानवाला, स्यालकोट, शाहपुर, रावलपिण्डी पर अधिकार मिल गया पंजाब को एक अलग क्षेत्रीय इकाई क रूप में रखा गया 1857 की क्रान्ति के बाद जमुना के दक्षिण तटीय क्षेत्र को उत्तरी पश्चिमी प्रान्त से अलग कर पंजाब के साथ जोड़ दिया गया।

अजमेर–मारवाड़, कुर्ग, बरार, अण्डमान द्वीप समूह स्वतंत्र प्रशासनिक इकाई के रूप में विकसित हुए।

क्षेत्रीय प्रसार तथा विकास के साथ साथ प्रशासनिक व्यवस्था का विकास भी हो रहा था। 1623 ई. में इंग्लैण्डके राजा जेम्स प्रथम ने कम्पनी को यह अधिकार दिया कि कम्पनी की भारतीय बस्ती में किसी अंग्रेज कर्मचारी द्वारा अपराध किये जाने पर उसे दण्डित करने के अधिकार बस्ती के अधिकारी को होगा गंभीर अपराध के मामलों में जूरी द्वारा सुनवाई की व्यवस्था भी की गई। 1661 में चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में कम्पनी को और अधिकार प्राप्त हुए। इस वर्ष के फरमान द्वारा कम्पनी को अपनी बस्ती को किलेबन्दी करने, उनमें गोला–बारुद व अन्य हथियार रखने, रक्षा कार्य के लिए स्वयंसेवक रखने तथा किसी भी गैर ईसाई राज्य के साथ युद्ध अथवा सन्धि करने का अधिकार दिया गया। फरमान ने फैक्टरी के गवर्नर व परिष्द के न्यायिक अधिकारों में भी वृद्धि की।

भारत में प्रशासनिक व्यवस्था का विकास

1772 से भारत के अन्दर प्रशासनिक व्यवस्था के विकास पर साम्राज्यवाद के स्वरूप का सीधा प्रभाव पड़ा। 1813 ई. तक का समय ब्रिटेन में वाणिज्यीक पूँजीवाद का समय था। इस काल में कम्पनी की रूचि मूलतः व्यापार से धन कमाने और प्राप्त करने में थी। व्यापार के बाद धन पाने का दूसरा प्रमुख स्रोत भू–राजस्व था। अतः इस दौर में कम्पनी ने भू–राजस्व के प्रशासन की तरफ विशेष ध्यान दिया। 1813 के बाद का समय ब्रिटेन में औद्योगिक पूँजीवाद का समय था। इस काल में भारत का शोषण कच्चे माल के स्त्रोत एवं निर्मित माल के बाजार के रूप में होना था, जिसके लिए ब्रिटिश उद्योग और इसलिए ब्रिटिश शासन का गाँवों तक पहुँचना जरूरी हो गया, अतः इस काल में प्रशासनिक व्यवस्था का अधिक गहन व विस्तृत विकास हुआ।

भू–राजस्व के प्रशासन का विकास

भू–राजस्व के प्रशासन के क्षेत्र मे कम्पनी को प्रारंभिक प्रयोग करने का अवसर प्लासी के युद्ध के बाद चौबीस परगना के इलाके में मिला। यह इलाका कम्पनी को जमींदारी में मिल गया था। यहाँ पुराने जमींदारों को हटाकर पहले तो कम्पनी ने स्वयं लगान वसूल किया। बाद में लगान वसूली का काम ठेके पर दे दिया गया। बंगाल की दीवानी प्राप्त हो जाने पर लगान वसूली का दायित्व नायब दीवानों को दे दिया गया। वह इस कार्य को आमिलों की सहायता से करते। 1769 में आमिलों को हटाकर उनके स्थान पर सुपरवाइजर नियुक्त किया गए। 1770 में भू–राजस्व की कुशल व्यवस्था के लिए मुर्शिदाबाद तथा पटना में वित्त नियंत्रण परिषदों को स्थापित किया गया। 1772 में बंगाल में द्वैधशासन का अन्त करने क साथ ही वारेन हेस्टिंग्ज ने उस काल की भू–राजस्व व्यवस्था को भी समाप्त कर दिया। मुर्शिदाबाद और पटना के नायब दीवान के पद समाप्त कर दिए गए। भू–राजस्व की बेहतर व्यवस्था के लिए मई 1772 में एक 'सर्किट कमेटी' का गठन किया गया। इस कमेटी मे बंगाल का गवर्नर तथा उसकी परिषद के चार सदस्य शामिल थे। कमेटी के गठन के बाद ही वित्त नियंत्रक कमेटियों को भी समाप्त कर दिया गया। वारेन हेस्टिंग्ज का समय लगान प्रशासन के क्षेत्र में प्रयोगों का समय रहा। उसके द्वार स्थापित की गई नई व्यवस्था में लगान वसूली का ठेका पाँच वर्ष के लिए उसे दिया जाने लगा, जो अधिकतम धनराशि लगान के रूप में देने का वादा करे। आगे चलकर पाँच वर्ष के इस समय को कम करके एक वर्ष कर दिया गया। वारेन हेस्टिंग्ज की इस व्यवस्था ने भू–राजस्व के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति को ला दिया। इस व्यवस्था ने पूर्णिया, बर्दवान, राजशाही व दीनाजपुर की पुरानी जमींदारियों का अन्त कर दिया, क्योंकि वह ऊँची बोली पर लगान देने में असमर्थ थे। इस व्यवस्था से वणिक जमींदारों का एक नया वर्ग पैदा हुआ जो लगान वसूल करके धन कमाने में रूचि रखता था, किन्तु कृषि व किसानों के हित की उसे चिन्ता नहीं थी। प्रसिद्ध इतिहासकार तारचन्द्र ने वारेन हेस्टिंग्ज की भू–राजस्व व्यवस्था की आलोचना करते हुए लिखा कि वह बंगाल में अकाल, उपद्रव और दुर्दशा को छोड़ गया। आर.पी. दत्त के अनुसार इस व्यवस्था ने जमींदार तथा रैयत के मध्य सम्पर्क सूत्र को नष्ट कर भारतीय ग्रामीण व्यवस्था म दरार उत्पन्न करने का काम किया।

(अ) स्थायी बन्दोवस्त

इस स्थिति में यह स्वाभाविक था कि वारेन हेस्टिंग्ज के उत्तरधिकरी लॉर्ड कार्नवालिस को भू–राजस्व की व्यवस्था को सही करने का विशेष दायित्व सौंपा जाय। कार्नवालिस ने समस्या पर विचार करने के लिए एक कमेटी का गठन किया। कमेटी ने मुख्य रूप से तीन प्रश्नों पर विचार किया । ये प्रश्न थे– (i) भूमि का स्वामी किसे माना जाय? (ii) लगान कितना हो? तथा (iii) लगान का निर्धारण कितने समय के लिए किया जाय? किसी भी प्रश्न के उत्तर पर कमेटी की एक राय नही थी, अन्ततः उसके विवेचन के फलस्वरूप 1793 के स्थायी बन्दोवस्त का जन्म हुआ।

कार्नवालिस से पहले वारेन हेस्टिंग्ज तथा उनकी कमेटी के सदस्य बारवेल के अनुसार भूमि का स्वामी राज्य था। कार्नवालिस के समय में ग्राण्ट का भी मत यही था, किन्तु हेस्टिंग्ज के समय में फ्रांसिस जमींदार को भू–स्वामी

मानते थे। कार्नवालिस के द्वारा नियुक्त जाँच कमेटी के अध्यक्ष सर जॉन शोर का भी कहना था, ''मैं जमींदारों को उस जमीन का मालिक समझता हूँ, जो उन्हें धर्मगत कानून के अनुसार उत्तराधिकार में मिली है, ''लॉर्ड कार्नवालिस ने भी इसी मत को स्वीकार किया।

1790 में जमींदारों का भू–स्वामी मानते हुए उनके साथ दस वर्ष का बन्दोवस्त किया गया। यह जॉन शोर के विचारों के अनुकूल था, किन्तु कार्नवालिस इसे उचित नहीं मानता था। उसकी राय में ''भू–स्वामी का जोकि जमीन का वास्तविक स्वामी है, अगर दस वर्ष तक ही मालिक बनना है और उसके बाद उसे फिर से नये कर निर्धारण का सामना करना है, तो फिर अत्याचार के अलावा क्या आशा की जा सकती है,'' इस अत्याचार को रोकने के लिए 1793 में कम्पनी की अनुमति से बन्दोवस्त को स्थायी रूप दे दिया गया।

लगान की राशि के निर्धारण के प्रश्न पर बन्दोवस्त से ठीक पहले प्राप्त होने वाले भू–राजस्व को नई व्यवस्था मे निर्धारित राजस्व में बदल दिया गया। इस राजस्व के 89 प्रतिशत को जमींदार सरकारी खजाने में जमा करते तथा 11 प्रतिशत उनके पास रहता था। इस प्रकार स्थायी बन्दोवस्त में बंगाल में भूमि का स्वामी जमींदार को मान लिया गया तथा उसके द्वारा दिया जाने वाला लगान हमेशा के लिए निर्धारित कर दिया गया।

स्थायी बन्दोवस्त कई दृष्टियों से सरकार के लिए लाभप्रद था। इसके कारण अब सरकार को भू–राजस्व से होने वाली वार्षिक आय सुरक्षित हो गई। लगान की वसूली जमींदारों का उत्तरदायित्व हो जाने के काण लगान वसूली पर होने वाला सरकारी खर्च समाप्त हो गया तथा इस कार्य में लगे सरकारी तन्त्र एवं कर्मचारियों को दूसरे प्रशासनिक कार्यो में लगाया जा सका। इस व्यवस्था ने जमींदारों के हितों को सुरक्षित कर उन्हें अपनी जमींदारी के विकास के लिए प्रेरित किया। इस आधार पर आर. सी. दत्त का मानना था, कि ''1793 की लॉड कार्नवालिस की स्थायी भू–व्यवस्था सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण और सफल उपाय थी, जो ब्रिटिश राष्ट्र ने भारत में अपनायी,'' इस बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य का सबसे बड़ा लाभ साम्राज्य को यह हुआ कि इसने ग्रामीण क्षेत्र में एक शक्तिशाली सामाजिक वर्ग को जो पूरी तरह से राजभक्त था, स्थापित कर दिया। बंगाल बिहार व उड़ीसा में व्यवस्था की सफलता से उत्साहित होकर इसे असम, बनारस तथा मद्रास के कुछ भागों में भी लागू कर दिया गया।

स्थायी बंदोवस्त से लाभ के साथ नुकसान भी हुआ। लगान सदा के लिए निर्धारित होने का तात्पर्य था कि एक जमींदारी में कृषि विकास से होने वाले लाभ का फायदा सरकार को नही मिलता। भू–राजस्व की वृद्धि द्वारा सरकारी आय बढ़ाने का स्त्रोत बन्द हो गया, दूसरी ओर इस व्यवस्था में किसानों के हितों की रक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई, उन्हें पूरी तरह से जमींदारों को दया पर छोड़ दिया गया। आरंभ के दौर में लगान की दर ऊँची होने के कारण जमींदारों को उसका भुगतान करने में कठिनाई हुई तथा उनकी जमींदारियाँ छीन ली गई। आगे चलकर गैरहाजिर जमींदारी (Absentee Landlordism) के विकास ने इस आशा को फलीभूत नहीं होने दिया कि जमींदार अपनी जमींदारी में रहकर कृषि विकास पर ध्यान देगा।

(अ) रैयतवारी व्यवस्था

रैयतवाड़ी व्यवस्था रैयतवाड़ी दो शब्दों के मेल से बना है। रैयत (कृषक) + वाड़ी (बंदोबस्त) अर्थात किसानों के साथ प्रबंधन। इसमें सरकार किसानों के साथ प्रत्यक्ष तौर पर भू–राजस्व का प्रबंधन करते है। बंगाल के स्थायी बन्दोवस्त को मद्रास प्रेसीडेंसी में लागू नहीं किया गया, वहाँ पर 1792 में बारामहल क्षेत्र में 'कर्नल रीड' के द्वारा रैयतवारी व्यवस्था का प्रयोग किया गया। इस व्यवस्था में जमींदार को नहीं, अपितु वास्तविक किसान को भू–स्वामी मानकर उसके साथ लगान का बन्दोवस्त किया गया। बन्दोवस्त स्थायी न होकर 3 से 10 वर्ष की अवधि के लिए था। रीड की इस व्यवस्था का समर्थन मुनरो के द्वारा किया गया तथा निजाम से प्राप्त किये गये प्रदेशों ने उसने इसी व्यवस्था को लागू किया। कुछ समय के लिए कम्पनी के डाइरेक्टरों के निद्रेश पर यह व्यवस्था स्थगित कर दी गई, किन्तु 1818 ई. में इसे फिर से लागू कर दिया गया। मुनरो 1820–27 तक मद्रास का गवर्नर रहा और इस काल में यह व्यवस्था वहाँ पर लागू रही। मुनरों ने कुल उपज का 1/3 भाग को भूमि कर का आधार

माना। मद्रास में यह व्यवस्था लगभग 30 वर्षो तक लागू रही। 1864 ई0 में कंपनी सरकार ने भू–भाटक (भूमि का भाड़ा, किराया) को 50 प्रतिशत निश्चित कर दिया। मद्रास के साथ ही बम्बई प्रेसीडेंसी के कुछ हिस्सों, असम तथा कुर्ग के कुछ हिस्सों एवं बरार में भी इस व्यवस्था को लागू किया गया। बम्बई प्रेसीडेंसी में रैयतवारी व्यवस्था को लागू कराने में एलफिंस्टन व चैपलिन की रिपोर्ट की मुख्य भुमिका रही। भूमि सर्वेक्षण का कार्य 1824–28 में प्रिंगल के द्वारा किया गया। व्यवस्था को अन्तिम रूप 1847 में विनगेट की सवक्षण रिपोर्ट के आधार पर दिया गया था।1855 तक यह व्यवस्था एक प्रकार से प्रयोग के रूप में चलती रही। उस वर्ष जमीन का विस्तृत सर्वेक्षण कर तथा उपज के 1/9 को लगान का आधार बनाकर इसे व्यवस्थित रूप दिया गया। उस वर्ष जमीन का विस्तृत सर्वेक्षण कर तथा उपज के 1/2 को लगान का आधार मानकर इसे व्यवस्थित कर दिया गया। कालान्तर में इसे 66 प्रतिशत से ज्यादा तक बढ़ाया गया। परिणामस्वरूप दक्कन में 1879 ई0 में दक्कन कृषक राहत अधिनियम पारित किया गया।

ब्रिटिश भारत की कृषि भूमि का आधे–से–अधिक भाग रैयतवारी व्यवस्था के अन्तर्गत था।

रैयतवारी व्यवस्था से सरकार को कई लाभ दिख रहे थे, इसमे राज्य तथा किसान के मध्य सीधा सम्पर्क स्थापित होता था। भूमि पर निजी स्वामित्व का लाभ जनसंख्या के एक बड़े भाग को मिलता था, जिससे ग्रामीण क्षेत्र में साम्राज्य के सामाजिक आधार के व्यापक होने की सम्भावना थी राज्य व किसान के मध्य जमींदार तथा अन्य बिचौलिया के न होने के कारण राज्य व किसान की कीमत पर उसके पुष्ट होने की सम्भावना समाप्त हो गई थी। व्यवस्था के स्थायी न होने के कारण कृषि विकास तथा कृषि आय में वृद्धि में सरकार अपना हिस्सा लगान का पुनः निर्धारण करके प्राप्त कर लेती थी। साथ ही व्यवस्था इतने दीर्घकाल के लिए की जा सकती थी कि उसे स्थायी बन्दोवस्त के सभी लाभ प्राप्त हो जाएं।

रैयतवारी व्यवस्था के अपने कुछ दोष थे। यह व्यवस्था जमींदारी व्यवस्था की तुलना में अधिक महँगी थी तथा इसमें प्रशासन का कार्यभार बहुत बढ़ गया था। जमीन का सर्वेक्षण करने, व्यक्तिगत किसान के खेतों का रिकॉर्ड रखने, लगान का निर्धारण और वसूली करने के काम के लिए राजस्व विभाग का विस्तार करना पड़ा, कर्मचारियों की संख्या बढ़ानी पड़ी तथा अन्य प्रशासनिक विभागों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके साथ जोड़ना पड़ा। इन कार्यो में लगे अधिकारियों में भ्रष्टाचार तेजी के साथ बढ़ा। जहाँ तक किसान का सम्बन्ध था उसे इस व्यवस्था से भी कोई विशेष लाभ नही हुआ। रैयतवारी व्यवस्था में लगान की दर को बहुत ऊँचा रखा गया जिससे किसान के पास बहुत कम बचता। जहाँ तक उसके उत्पीड़न का सवाल था तो अब जमींदार और उसके लठैतों का स्थान सरकारी कर्मचारियों की फौज ने ले लिया। वेंकटसुब्बैया ने अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''इस भू–राजस्व व्यवस्था (रैयतवारी व्यवस्था) का वास्तविक क्रियान्वयन निरशा की एक दुःखद दास्तान है।''

(इ) महालवारी व्यवस्था

भू–राजस्व की इस व्यवस्था का विकास मुख्य रूप से उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के क्षेत्रों में किया गया। आरंभ में सत्तान्तरित (अवध के नवाब से प्राप्त प्रदेश में) तथा विजित (सिन्धिया से जीते गये प्रदो में) प्रदेशों में स्थायी बन्दोवस्त को लागू करने का विचार था, किन्तु इन क्षेत्रों की भू–व्यवस्था करने के लिए नियुक्त बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स ने इस व्यवस्था को अव्यावहारिक तथा अलाभप्रद माना।

मुख्य बात यह थी कि 19वीं शताब्दी के आरंभ में ब्रिटिश भारत की सरकार का खर्च बढ़ गया था तथा ब्रिटेन की औद्योगीकरण के लिए पूँजी की माँग भी बढ़ रही थी। इन माँगों को पूरा करने के लिए भू–लगन के रूप में अधिक से अधिक धन वसूल करना जरूरी था। स्थायी बन्दोवस्त को अपनाकर यह जरूरत पूरी नहीं हो सकती थी। इस जरूरत को ध्यान में रखकर ही महालवारी व्यवस्था का 1819–22 के मध्य विकास किया गया।

इस व्यवस्था को लाने का श्रेय होल्ट मेकेन्जी को है, व्यवस्था के सम्बन्ध में उसने सुझाव दिया था कि भूमि का सर्वेक्षण किया जाय तथा भूमि से संबंधित व्यक्तियों के अधिकरों का ब्योरा रखा जाए। लगन के निर्धारण हेतु गाँव या गाँवों के समूह (महाल) को इकाई माना जाए। निर्धारित लगान को वसूल करने का दायित्व गाँव के

मुखिया या लम्बरदार को दिया जाए। होल्ट मेकेन्जी के इन सुझावों को सरकार ने स्वीकार कर लिया तथा उन्हें कानूनी रूप प्रदान करने के लिए 1822 मं रेगूलेशन–7 को पारित किया गया था। इस व्यवस्था में जमीन का मालिक ग्राम सभा को माना गया था तथा लगान भूमि के किराए का 95 प्रतिशत तय किया गया था । रेगूलेशन–7 की व्यवस्था को लागू करने में अनेक समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनके अनुभव के आधार पर विलियम बटिक के समय में 1833 ई. में रेगूलेशन–9 को पारित करके व्यवस्था में सुधार किया गया। यह रेगूलेशन मार्टिन वर्ड के द्वारा क्रियान्वित हुआ। रेगूलेशन–9 के अन्तर्गत व्यवस्था की अवधि को 30 वर्ष रखा गया, भू–भाटक में सरकार का हिस्सा 66 प्रतिशत तय किया गया उस निर्धारित करने के लिए विस्तृत सर्वेक्षण, भूमि का वर्गीकरण तथा उत्पन्न की गई फसल को ध्यान में रखा गया। इन सुधारों के कारण मार्टिन बर्ड को 'उत्तरी भारत में भू–व्यवस्था का जनक' (Father of Land Settlement in North India) का गया।

उत्तरी तथा मध्य भारत के अलावा महालवारी व्यवस्था को पंजाब के कुछ भागों में तथा दक्षिण भारत के कुछ जिलों में भी लागू किया गया। इस व्यवस्था के समर्थन में सबसे बड़ा तर्क यह था कि यह पहले की भारतीय भू–व्यवस्थाओं की परम्पराओं के अनुकूल थी। व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी थी कि इसमें गाँव के मुखिया व लम्बरदार लगान वसूल करने वाले की हैसियत से प्राप्त स्थिति का दुरुपयोग अपनी माली हालत को सुदृढ़ करने तथा छोटे व गरीब किसानों का उत्पीड़न करने के लिए करते थे।

भू–राजस्व व्यवस्था के प्रभावः– कम्पनी के शासनकाल में भू–राजस्व व्यवस्था में किए गए परिवर्तनों का ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन परिवर्तनों ने जमीन को निजी सम्पत्ति में बदल दिया। निजी सम्पत्ति के रूप में अब जमीन का क्रय–विक्रय होना, गिरवी रखा जाना तथा बेदखली बड़े पैमाने पर आरंभ हो गई। इस तरह जमीन को पण्य (Commodity) में बदलकर भारतीय ग्रामों में पूँजीवाद के प्रवेश के लिए आधार तैयार कर दिया गया।

भू–व्यवस्था के परिवर्तनों ने ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक ढाँचे को भी प्रभावित किया। इसके फलस्वरूप कुछ नये सामाजिक वर्ग उत्पन्न हुए तथा कुछ वर्गो का सामाजिक आर्थिक जीवन में महत्व और भूमिका बढ़ गई। मुगलकालीन जमींदार वर्ग के साथ ही स्थायी बन्दोवस्त द्वारा पैदा किया गया नया जमींदार वर्ग जिसका एक भाग गैर–काश्तकार जमींदार के रूप में था, सामने आया। रैयतवारी व्यवस्था के क्षेत्र में काश्तकार भू–स्वामी का विकास हुआ। गांवों में पट्टेटारों, छोटे किसान (काश्तकारों) तथा खेत मजदूरों की संख्या बढ़ी। लगान के नगद भुगतान तथा किसान की बढ़ती गरीबी ने सूदखोर महाजन को विशेष स्थान दिला दिया।

अन्त में भू–व्यवस्था का रूप कुछ भी क्यों न रहा, राज्य ने उपज में अपनी माँग को बहुत ऊंचा रखकर किसान का आर्थिक शोषण मात्र ही नहीं किया, अपितु कृषि उपज के अधिशेष को लगभग पूरा ही हड़पकर कृषि के क्षेत्र में उन्नति की सम्भावनाओं का भी अन्त कर दिया, सामाजिक दृष्टि से यह व्यवस्था विनाशकारी और आर्थिक दृष्टि से विफल सिद्ध हुई।

राजस्व प्रशासन

भू–राजस्व सरकार की आय का सबसे महत्वपूर्ण, किन्तु एकमात्र साधन नहीं था। कम्पनी को राजस्व के अन्य स्त्रोतों के प्रशासन हेतु भी प्रबन्ध करना पड़ा। इन अन्य स्त्रोतों में 'नमक राजस्व' का प्रमुख स्थान था। बंगाल तथा मद्रास में नमक के उत्पादन और बिक्री पर सरकार का एकाधिकार था। बम्बई में इस काम को सरकार तथा निजी दोनों ही स्तर पर किया जाता था। नमक पर एकाधिकार की स्थापना बंगाल में 1772, मद्रास में 1805 तथा उड़ीसा में 1814 में हुई थी। बंगाल में नमक बनाने वाले को मोलुंगी (Molungi) कहा जाता था। वह कम्पनी के एजेन्ट के निरीक्षण में नमक बनाते थे। अवैध उत्पादन तथा चोरबाजारी को रोकने के लिए नमक चौकी स्थापित की गई थी। इनके मुख्य अधिकारी सुपरिन्टेंडेंट थे। आरंभ में नमक का प्रशासन बोर्ड ऑफ ट्रेड के हाथ में था।

1819 में इसका उत्तरदायित्व बोर्ड ऑफ साल्ट, कस्टम एण्ड ओपियम को सौंप दिया गया। मद्रास में नमक उत्पादन के कार्य को एक एजेन्सी के द्वारा जो बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के अधीन कम करती थी, देखा जाता था। बाद में यह कार्य कलक्टर तथा उसके सहायकों को सौंप दिया गया। 1836 में नमक प्रशासन पर विचार करने क लिए नियुक्त सलेक्ट कमेटी ने सिफारिश की कि उसके उत्पादन में सरकारी एकाधिकार को समाप्त कर दिया जाए। यह सिफारिश स्वीकार कर ली गई, नमक कर का जनता के द्वारा सदा विरोध किया गया और उसे समाप्त करने की मांग की गई जिसे सरकार ने स्वीकार नहीं किया।

अफीम राजस्व का एक और मुख्य स्त्रोात था। इसके उत्पादन पर भी राज्य की इजारेदारी थी इसके उत्पादन क्षेत्र बिहार तथा बनारस थे। प्रबन्धन का कार्य एजेन्ट के द्वारा किया जाता था, जो कि कम्पनी के कर्मचारी होते थे। अफीम तैयार करने के प्रमुख कारखाने पटना तथा गाजीपुर में थे अफीम का चीन को बड़ी मात्रा में निर्यात होता था। यह व्यापार निजी हाथों में था। 1822 में मालवा में एक एजेन्सी की स्थापना वहाँ के अफीम उत्पादन को नियंत्रित करने के लिए की गई थी, किन्तु कुछ वर्षो वाद इसे बन्द कर दिया गया।

समुद्री मार्ग से आने वाले माल पर तथा देश क अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे गए माल पर 'कस्टम ड्यूटी ली जाती थी। 1810 के रेग्यूलेशन द्वारा कलकत्ता, हुगली तथा चिटगाँव के बन्दरगाह पर समुद्री मार्ग से आई वस्तु पर कर लेने के बाद उस पर अन्दरुनी भाग में कर नहीं लगाया जाता था। कर 2.5 से 7.5 प्रतिशत तक होता था। कस्टम ड्यूटी का प्रबन्धन बम्बई में रेवेन्यू कलक्टर के हाथ में था तथा गुजरात में इस कार्य के लिए दो कोस्टमास्टर नियुक्त किए गए थे जहाँ तक प्रेसीडेंसी के अन्दर चुंगी चौकी पर लिए जाने वाले कर (Transit Duty) का प्रश्न था उसे बंगाल में 1836 में तथा बम्बई, मद्रास में कुछ समय बाद समाप्त कर दिया गया।

अन्य फुटकर करों को सेयर (Sayer) कहा जाता था मद्रास में व्यवसाय तथा व्यापार पर लगे टैक्स को 'मुहतरफा' (Muhtarfa) कहा जाता था, मादक द्रव्य तथा दवाओं पर 'आवकारी कर लिया जाता था। बम्बई में चक्का कर' (Wheel tax) सवारी गाड़ियों व माल ढोने वाली गाड़ियों पर लिया जाता था, स्टाम्प कर बंगाल में 1797 में, बम्बई में 1816 तथा मद्रास में 1808 में लागू किया गया। कोयम्बटूर , कर्णाटक तथा मलाबार में तम्बाकु की खरीद पर सरकार का हजारा था। अधिकांश तीर्थ स्थानों पर तोर्थयात्रा कर लिया जाता था। गाँवों से चौकीदारी कर भी कई स्थान पर वसूल किया जाता था।

(ii) न्याय प्रशासन का विकास

कम्पनी के काल में न्याय–व्यवस्था के विकास के आरंभिक चरण पर भू–राजस्व के प्रशासन के क्षेत्र में किए गए प्रयोगों तथा परिवर्तनों का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। उत्तर मुगलकाल में शासन के ह्रास से न्याय व्यवस्था भी प्रभावित हुई थी। बंगाल में इलाहाबाद की सन्धि के फलस्वरूप स्थापित द्वैधशासन ने तो न्याय प्रबन्ध का जनाजा ही निकाल दिया था। न्याय की जिम्मेदारी नवाब पर थी जो व्यवस्था स्थापित करनें म सक्षम नहीं था तथा कम्पनी अपने को भू–राजस्व की वसूली से संबंधित मामलों में न्याय की देखने तक सीमित रखकर सन्तुष्ट थी। इस न्याय की जिम्मेदारी सुपरवाइजरों पर थी तथा अपील की सुनवाई वित्त नियंत्रक कमेटियों द्वारा की जाती थी। सही बात ता यह ह कि 1772 से पूर्व कम्पनी सरकार ने न्याय व्यवस्था की तरफ न तो ध्यान दिया और न ही सुधारने का प्रयास किया।

न्याय व्यवस्था का पुनर्गठन करते समय वारेन हेस्टिंग्ज जानता था कि पश्चिम की न्याय पद्धति को एकदम बंगाल में लागू करना संभव नहीं है। अतः उसने मुगलकालीन न्याय व्यवस्था में ही नया जीवन फूँकने तथा उसे नए सिरे से गठित करने का प्रयास किया। बहुत छोटे दीवानी के मामले जिनमें दस रूपये से अधिक की राशि का प्रश्न न हो गाँव के प्रधान या मुखिया द्वारा सुने जा सकते थे। 500 रू तक के मामले का निर्णय करने का अधिकार जिला दीवानी अदालत को दिया गया। पत्येक जिले में स्थापित अदालत का अध्यक्ष जिले का कलक्टर होता था

उसकी मदद के लिए अन्य जज या मजिस्ट्रेट नियुक्त किए जा सकते थे। जिला अदालतों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनने के लिए कलकत्ता में सदर दीवानी अदालत को स्थापित किया गया। बंगाल का गवर्नर इसका अध्यक्ष होता था तथा उसकी परिषद के दो सदस्य सहायक न्यायाधीश के रूप में रहते थे।

फौजदारी के मामलों की सुनवाई करने के लिए प्रत्येक जिले में फौजदारी अदालत को स्थापित किया गया। इस अदालत का अध्यक्ष काजी होता था वह दो मुफ्ती की सहायता से न्याय करता था। इन जिला अदालतों के निर्णय के विरूद्ध अपील सुनने के लिए सदर निजामत अदालत स्थापित की गई। इसका केन्द्र मुर्शिदाबाद था। सदर निजामत अदालत का अध्यक्ष नायब नाजिम होता था तथा वह काजी व मुफ्ती की सहायता से न्याय करता था।

वारेन हेस्टिंग्स ने यह व्यवस्था की कि अदालत की कार्यवाही का लिखित रिकॉर्ड रखा जाए। न्याय करने के लिए उसने हिन्दू व मुसलमानों के सर्वमान्य व प्रचलित कानूनों को बंगला एवं फारसी भाषा में संहिताबद्ध करके उपलब्ध कराया। फौजदारी मामलों में केवल मुस्लिम कानून को लागू किया गया।

वारेन हेस्टिंग्ज के शासनकाल में कलकत्ता के नागरिका को न्याय देने के लिए रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई। संसद के इस कार्य ने बंगाल में न्याय की दोहरी व्यवस्था को स्थापित किया, क्षेत्राधिकार को लेकर सुप्रीम कोर्ट तथा सदर अदालतों में टकराव होता रहा।

1780 में वारेन हेस्टिंग्ज ने लगान प्रबन्ध तथा न्याय व्यवस्था को एक–दूसरे से अलग करने का कदम उठाया, किन्तु उसका यह प्रयोग 1782 तक ही चल सका।

लॉड कार्नवालिस व न्याय–प्रशासन

न्याय के क्षेत्र में वारेन हेस्टिंग्ज के कार्य को लॉर्ड कार्नवालिस के द्वारा और आगे बढ़ाया गया, कार्नवालिस ने दीवानी न्याय के ढँचे का पुनर्गठन किया। उसने प्रत्येक जिले के मुख्य कस्बे में रजिस्ट्रार, अमीन व मुसिफ की अदालतों का गठन किया। इनके ऊपर प्रत्येक जिले में जिला अदालत थी जिसमें अंग्रेज मजिस्ट्रेट हिन्दू पण्डित तथा मुस्लिम काजी की मदद से न्याय करता था। जिला अदालत से ऊपर कलकत्ता, ढ़ाका, पटना और मुर्शिदाबाद में अपील की प्रान्तीय अदालतें स्थापित की गई थी। प्रान्तीय अदालत में तीन जज, एक रजिस्ट्रार, एक काजी, एक पण्डित तथा एक मुफ्ती होता था, प्रान्तीय अदालत के ऊपर सदर दीवानी अदालत थी। कलकत्ता स्थित इस अदालत में गवर्नर जनरल व उसकी परिषद, काजी, मुफ्ती, पण्डित व रजिस्ट्रार होते थे। सदर दीवानी अदालत के निर्णयों के विरूद्ध अपील प्रिवी कॉन्सिल में की जा सकती थी।

फौजदारी न्यायालयों का भी कार्नवालिस के द्वारा पुनर्गठन किया गया। इन अदालतों में व्यापक सुधार लाने के लिए दिसम्बर 1790 में एक योजना तैयार की गई। इस याजना के आधार पर जो व्यवस्था कायम हुई उसमें फौजदारी अदालत के सबसे निचले स्तर पर जस्टिस ऑफ पीस थे। जिला फौजदारी अदालत को समाप्त करके चार भ्रमणशील न्यायालय (Circuit Courts) स्थापित किए गए। प्रत्येक न्यायालय में दो अंग्रेज न्यायाधीश होते थे। इन न्यायालयों के लिए आवश्यक था कि वह वर्ष में दो बार आन्तरिक प्रदेशों का दौरा करके न्याय का कार्य करें। सदर फौजदारी अदलत को अब मुर्शिदबाद से हटाकर कलकत्ता ले आया गया। फौजदारी न्याय की प्रक्रिया और सिद्धांतों में परिवर्तन करते हुए कार्नवालिस ने हत्या के मामले में रक्त मूल्य' का सिद्धांत समाप्त कर दिया जिसका तात्पर्य था कि मृतक के अभिभावक हत्यारे को क्षमा नहीं कर सकते थे। साक्षी के धर्म विशेष का अब मामले की सुनवाई में महत्व नहीं रहा तथा मुस्लिम की हत्या के मामले में अन्य धर्म के मानने वाले की साक्ष्य भी मान्य हो गई। हत्या के मुकदमे में निर्णय देते समय हत्या के लिए प्रयुक्त ढंग या अस्त्र के स्थान पर हत्यारे के उद्देश्य को ध्यान में रखने का नियम बनाया गया। अक्टूबर 1791 से अंगभंग का दण्ड देने पर रोक लगा दी गई तथा एक अंग काटने की सजा को 7 वर्ष के व दो अंग काटने की सजा को 14 वर्ष के कठोर कारावास की सजा में बदल दिया गया।

कार्नवालिस ने कानून को संहिताबद्ध किया उसने वादी से अदालत फीस लेने का नियम भी लागू किया।

कार्नवालिस ने न्याय व्यवस्था को अधिक व्यवस्थित करने के साथ ही उसका पाश्चात्यीकरण भी किया। जहाँ तक सम्भव हुआ, उसने भारतीयों को न्याय के पदों से अलग कर अंग्रेज न्यायाधीशों को न्याय की जिम्मेदारी सौंपी, उसकी व्यवस्था में न्याय महँगा और धीमा हो गया। मुकदमेबाजी बढ़ी तथा कानून और न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता ने यह जरूरी कर दिया कि अपने वाद को सही ढंग से रखने के लिए अथवा अपना बचाव करने के लिए वादी व प्रतिवादी कानूनी दावपेंच के जानकारो की सहायता ले।

वेलेजलीकाल के परिवर्तन

कार्नवालिस द्वारा स्थापित न्याय व्यवस्था में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन लॉर्ड वेलेजली के शासनकाल में किए गए। गवर्नर जनरल और उसकी परिषद सदर अदालतों के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्य को प्रभावी ढंग स नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि उनके पास समय का अभाव था। अतः उन्हें न्याय कार्य से मुक्त कर दिया गया तथा सदर दीवानी व सदर निजामत अदालत के लिए तीन संवैतनिक न्यायाधीश नियुक्त किए जाने लगे।

निचले स्तर पर अदालतों के बढ़ते कार्य के बोझ को हल्का करने के लिए 50 रूपये से 100 तक के मामले की सुनवाई हेतु सदर अमीन की अदालत का गठन किया गया। इसमें न्याय करने हेतु भारतीयों को नियुक्त किया गया, क्योंकि अंग्रेज न्यायाधीश को अधिक वेतन देना पड़ता। लॉर्ड हेस्टिंग्ज के शासनकाल के न्याय पशासन के क्षेत्र को परिवर्तित करते हुए बंगाल में न्यायाधीश तथा दण्डनायक की पृथकता को समाप्त कर दिया गया तथा कलेक्टर को दण्डनायक के रूप में काम करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। निचले स्तर पर मुकदमों की शीघ्र सुनवाई के उद्देश्य से मद्रास तथा बम्बई में ग्राम सभाओं को न्याय का सीमित अधिकार प्रदान कर दिया गया। बंगाल में मुंसिफ की अदालत का क्षेत्राधिकार 50 रू के स्थान पर 150 रू. के मामले को सुनने का तथा अमीन की अदालत को 500 रू तक का मामला सुनने का हो गया। इन अधिकारियों की संख्या में भी वृद्धि कर दी गई।

विलियम बेंटिंक के समय न्याय प्रशासन में सुधार

वेजेजली तथा लॉर्ड हेस्टिंग्ज के समय के परिवर्तनों के बावजूद विलियम बैंटिंक के समय तक न्याय प्रशासन का मूलाधार लॉड कार्नवालिस द्वरा स्थापित की गई व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के जेम्स मिल के अनुसार तीन प्रमुख दोष थे। इसका पहला दोष था न्यायपालिका के अधिकारों का असीमित तथा निरंकुश होना, दूसरा दोष था व्यक्ति के अधिकारों की कोई निश्चित परिभाषा नहीं होना तथा अन्तिम दोष था अधिकतर कानूनों का अलिखित रूप में पाया जाना। बैंटिक को जब भारत भेजा गया तो 1813 के चार्टर की अवधि समाप्त होने का समय नजदीक आ गया था। नया चार्टर प्राप्त करने के लिए कम्पनी के डाइरेक्टर भारत में अपनी उपलब्धियों का बेहतर रिकॉर्ड पेश करना चाहते थे। अतः उनकेनिर्देश पर बैंटिक को सुधारों का व्यापक कार्यक्रम लागू करना पड़ा। इस कार्यक्रम में न्याय प्रशासन का सुधार भी सम्मिलित था।

न्याय प्रशासन के क्षेत्र में बैंटिंक द्वारा किया गया एक मुख्य सुधार था– अपील तथा भ्रमण की चर अदालतों को समाप्त कर देना। इन अदालतों के न्याय कार्य को मजिस्ट्रेट तथा कलेक्टर को सौंप दिया गया, उनके ऊपर रेवेन्यू तथा सर्किट कमिश्नर को रखा गया। कुछ समय बाद कमिश्नर के पास केवल रेवेन्यू के मामले सुनने का अधिकार रहा। मजिस्ट्रेट उन मुदकमों को सुनता था जिनमें तीन वर्ष के कारावास तक का दण्ड दिया जा सकता हो। 14 वर्ष तक के कैद के दण्ड योग्य मामले सेशन जज के सामने जाते थे। इससे गंभीर मामले सेशन जज सदर जज को भेज देता था। मृत्युदंड देने का निर्णय दो न्यायाधीशों की बेन्च द्वारा सुनवाई के बाद ही दिया जा सकता था।

दीवानी न्याय के क्षेत्र में मुंसिफ को 300 रू. तक का तथा अमीन को1000 रू. तक का मामला सुनने का अधिकार दिया गया। रजिस्ट्रार की अदालत को समाप्त कर दिया गया। मुख्य सदर अमीन के एक नये पद का

सृजन करके उसे 5000 रू तक का मामला सुनने का अधिकार दिया गया। बाद में यह सीमा हटा दी गई तथा उन्हें किसी भी मूल्य के मामले को सुनने का अधिकार प्राप्त हो गया।

बेंटिंक के समय में इलाहाबाद में 1831 में सदर दीवानी तथा सदर निजामत अदालत को स्थापित किया गया तथा आगरा में भी अपील की अदालत स्थापित की गई इस काल में मैकाले की अध्यक्षता में एक विधि आयोग की स्थापना की गई आयोग के द्वरा कानुन को संहिताबद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। मैकाले ने दण्ड संहिता में सुधार करके उसे अधिक सरल तथा उपयोगी बनाया। दण्ड की कठोरता में भी कमी की गई। बैंटिंग ने निचली अदालतों में फारसी के विकल्प के रूप में स्थानीय भाषा में मुकदमे की सुनवाई की व्यवस्था की बड़ी अदालतों का कामकाज अंग्रेजी भाषा में किया जाने लगा।

कम्पनी के शासनकाल में न्याय व्यवस्था में सुधार हेतु अन्तिम कदम 1853 के चार्टर एक्ट के समय उठाया गया। इस अवसर पर दूसरे विधि आयोग की नियुक्ति की गई जिसकी सिफारिशों के आधार पर 1859–61 के मध्य में दण्ड विधि, सिविल प्रक्रिया विधि तथा दण्ड प्रक्रिया विधि की संहिता पारित की गई।

(iii) लोक सेवा का विकास

लोक सेवा (Civil Service) का विकास ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासन काल की प्रमुख विशेषता है इस विकास की विशिष्टता यह है कि इसका भारत में लोग सेवा की परम्परा से प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था तथा यह पूर्णतः स्वतन्त्र विकास के रूप में सामने आता है।

जिस समय कम्पनी की स्थापना हुई वह एक व्यापारिक संस्थान थी तथा उसे अपने कार्य को चलाने के लिए ऐसे लोगों की जरूरत थी, जो गणित, लेखन व व्यापारिक क्रियाओं का ज्ञान रखते हों इसी आधार पर आरंभ में कम्पनी के कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे तथा उनका श्रेणीकरण अप्रेंटिस (Apprientice), राइटर (Writer), फैक्टर (Factor) जूनियर मर्चेन्ट व सीनियर मर्चेन्ट के रूप में किया गया था नियुक्ति का अधिकार डाइरेक्टरों के हाथ में था। प्रशिक्षण का अभाव तथा भ्रष्टाचार कम्पनी की लोक सेवा के आरंभिक ढाँचे की मुख्य कमजोरी थी। क्लाइव तथा वारेन हेस्टिंग्ज के द्वारा लोक सेवकों में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने का प्रयास किया गया, किन्तु उन्हें इसमें विशेष सफलता नहीं मिली।

कम्पनी की लोक सेवा को प्रसंविदा युक्त लोक सेवा (Convenanted Civil Services) कहा जाता था, क्योंकि लोक सेवा के लिए चुने गए व्यक्ति को एक प्रसंविदा पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। इस प्रसंविदा में उसकी सेवा की शर्तो का उल्लेख रहता था।

कम्पनी की लोक सेवा के विकास में कार्नवालिस का विशिष्ट योगदान है। उसने कर्मचारियों के निजी व्यापार पर पूर्ण रोक लगा दी तथा भेंट व उपहार लेना भी निषिद्ध कर दिया। इसके एवज में कर्मचारियों का वेतन बढ़ा दिया गया। 1793 के चार्टर एक्ट ने यह भी व्यवस्था की कि लोक सेवा में नियुक्ति सामान्यतः भारत में कार्यरत कर्मचारियों मे से की जायेगी। कार्नवालिस द्वारा स्थापित व्यवस्था की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि भारतीयों की योग्यता व चरित्र में अविश्वास रखते हुए उसने लोक सेवा का पूर्णरूप से यूरोपीयकरण कर दिया जिससे प्रशासनिक व्यय में वृद्धि हुई साथ ही स्थानीय परिस्थितियों व परम्पराओं से सही ढंग से परिचित न होने के कारण प्रशासन चलाने मे लोकसेवकों को कठिनाई भी हुई और उनसे गलतियाँ भी हुई। दूसरे कार्नवालिस ने लोक सेवकों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की। अतः कार्यक्षमता को बढ़ाने में वह असफल रहा।

लोक सेवा को प्रशिक्षण के माध्यम से अधिक सक्षम बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम लॉर्ड वेलेजली के शासन काल में उठाये गये वेलेजली ने नवम्बर 1800 में कलकत्ता में कोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कम्पनी की लोक सेवा में किए गए लोगों की शिक्ष और प्रशिक्षण हेतु की। यहाँ पर तीन वर्ष तक लोक सेवक को परिवीक्षा (Probation) पर रखकर प्रशिक्षण दिया जाता, किन्तु यह प्रशिक्षण केन्द्र डाइरेक्टरों ने बन्द करवा दिया, क्योंकि

उन्हें भय था कि इससे संरक्षण अधिकार (Patronage) उनके हाथ से निकलकर गवर्नर जनरल के हाथ में पहुँच जाएगा। इसके स्थान पर 1805 में हरकोर्ड में ईस्ट इंडिया कॉलेज की स्थापना की गई तथा 1809 में कॉलेज को हैलीवरी में स्थानान्तरित कर दिया गया। प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना के बाद भी लोक सेवा एक बड़ी कमजोरी बनी रही लोक सेवक का चयन अब भी डाइरेक्टरों के द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाता था। यह चयन पूरी तरह भाई–भतीजावाद पर आधारित था, जिस कारण प्रसंविदायुक्त सेवा को 'पुत्रों तथा भतीजों के पवित्र विद्यालय' की संज्ञा दी गई थी। इसका लोक सेवा की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा था, क्योंकि 1826 में एक कानून के द्वारा लोकसेवक के दो वर्ष के प्रशिक्षण की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया था। यह अनिवार्यता 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा स्थापित की गई थी।

1831–32 में होल्ट मेकैजी ने लोक सेवा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए सलेक्ट कमेटी को सुझाव दिया कि लोक सेवक की भर्ती प्रतियोगितात्मक परीक्षा के माध्यम से की जाय। किन्तु यह सुझाव डाइरेक्टरों को मान्य नहीं था। इससे उनके संरक्षण अधिकार पर चोट होती थी। अततः 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा सिविल सर्विस के यूरोपीयकरण के सिद्धांत को त्याग दिया गया था तथा लोक सेवा में भारतीयों की नियुक्ति पर लगे प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया गया। इस व्यवस्था को कानून में रखने में मैकाले की महत्वपूर्ण भूमिका रही। चार्टर के द्वारा सीमित अर्थ में प्रतियोगिता के द्वारा भर्ती की पद्धति आरंभ की गई। नई व्यवस्था के अनुसार जितने पद रिक्त होते उससे चार गुना अधिक नाम डाइरेक्टर चुनते फिर उनके मध्य पतियोगिता के माध्यम से अन्तिम नियुक्ति की जाती। नामजद प्रत्याशी की आयु 17 से 21 वर्ष के मध्य होती थी। चुने गये प्रत्याशी तीन वर्ष हैलीबरी संस्थान में प्रशिक्षण पाकर पुनः परीक्षा देते और तब उन्हें नियुक्त किया जाता। 1834 में भर्ती में प्रतियोगिता के सिद्धांत को और प्रभावी ढंग से लागू करने की संभावना पर विचार करने के लिए मैकाले की अध्यक्षता में एक कमेटी को नियुक्त किया गया। कमेटी ने प्रतियोगी परीक्षा के विषयों की सूची तैयार की तथा परीक्षा में सम्मिलित होने की न्यूनतम आयु 18 वर्ष अधिकतम 23 वर्ष रखने का सुझाव दिया। कमेटी ने हैलीबरी संस्थान को बन्द करने का भी सुझाव दिया। कमेटी के सुझाव डाइरेक्टरों के विरोध के कारण लागू न हो सके।

1837 में एक कानून के द्वारा हैलीबरी संस्थान में प्रशिक्षण हेतु भर्ती के लिए प्रारंभिक परीक्षा (Preliminary Examination) के आयोजन की व्यवस्था की गई तथा 1853 के चार्टर एक्ट द्वारा खुली प्रतिस्पर्द्धा एवं परीक्षा का सिद्धांत लागू कर दिया गया। 1855 में ब्रिटिश सिविल सर्विस कमीशन' की नियुक्ति की गई तथा उसी वर्ष बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की देखरेख में पहली प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन हुआ।

कम्पनी के शासनकाल में प्रसंविदायुक्त सेवा (Covenanted Civil Service) के साथ ही प्रसंविदामुक्त (Non-Convenanted) सेवा का भी विकास हुआ। इस सेवा में मुख्यतः लिपिक वर्ग की भर्ती की जाती थी। आरंभ में यह सेवा अस्थायी थी, किन्तु प्रशासन कार्य बढ़ने के साथ इसने 19वी शताब्दी में स्थायी सेवा का रूप धारण कर लिया। बेंटिंक के शासनकाल में इस सेवा को औपचारिक तौर पर मान्यता प्रदान कर दी गई।

(iv) संचार तथा परिवहन का प्रशासन

जिस समय कम्पनी के हाथ में शासन पहुँचा संचार तथा परिवहन की स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय थी। कम्पनी क लिए यह चिन्ता का विषय था, क्योंकि व्यापार वाणिज्य की प्रगति के लिए संचार एवं परिवहन साधनों का विकसित होना लाभप्रद होता है।

इस काल में सड़क परिवहन की दयनीय स्थिति का पता कम्पनी के अनेक दस्तावेजों से होता है। लॉर्ड हेस्टिंग्ज पहला गवर्नर जनरल था जोकि सड़क परिवहन के विकास की तरफ ध्यान दे सका, उसके समय में बड़े पैमाने पर सड़क निर्माण का काम हाथ में लिया गया तथा इस कार्य के संचालन हेतु क्वार्टर मास्टर जनरल की नियुक्ति की गई। सड़क परिवहन के विकास में सरकार के साथ–साथ सम्पन्न व्यक्तियों के निजी प्रयासो की भी भूमिका रही। सड़क परिवहन को असली प्रोत्साहन लॉर्ड डलहौजी के समय में सार्वजनिक निर्माण विभाग

(P.W.D.) की स्थापना से मिला। सड़क के अभाव तथा मौजूदा सड़कों की बुरी हालत के कारण नदी व नहरों के मार्ग से यात्रा करने का प्रचलन अधिक था। सरकार के द्वारा नहरो का निर्माण कराने की तरफ ध्यान दिया गया। नाव परिवहन के लिए स्टीम के यानों को प्रयोग में लाए जाने की दिशा में पहला कदम 1828 में उठाया गया तथा हुगली नामक वाष्प नौका ने कलकत्ता से इलाहाबाद तक की यात्रा की, किन्तु नियमित स्टीमर सेवा के आरंभ होने में समय लगा।

निष्कर्षः–

औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटिश समाज में बुनियादी परिवर्तन आए। इसके कारण तीव्र आर्थिक विकास हुआ जो आज ब्रिटेन तथा यूरोप, सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और जापान के उच्च जीवन स्तर का आधार है। वास्तव में 19वीं सदी के आरंभ से पहले तक आज के आर्थिक दृष्टि से उन्नत और पिछड़े देशों के जीवन स्तरों में बहुत स्पष्ट अंतर नहीं था। पिछड़े देशों में औद्योगिक क्रांति का न होना ही वह कारण है जिसकी वजह से आज की दुनिया में आय में अधिक अंतर देखे जाते है।

संदर्भ सूचीः–

1. डोडवेल, एच.एच. द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वाल्यूम भी, एस. चांद, दिल्ली।
2. चांद तारा हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मोभमेन्ट, वोल्यूम, मिनिस्ट्री ऑफ इंफॉरमेशन एण्ड ब्राडकॉस्टिंग, नई दिल्ली।
3. मिश्रा, बी.बी. सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द इंडिया कंपनी, मेनचेस्टर, यूनिवर्सिटी प्रेस, मेनचेस्टर।
4. मिश्रा, बी.बी. द एडमिनिस्ट्रेशन हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस लंदन।
5. पांडा, बी. एन. ए सेनचुरी हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, 3 वोल्यूम, ए.आई.सी.सी., नई दिल्ली।
6. नेहरू, जवाहरलाल ऐन ऑटोवायोग्राफी, एलाइड पब्लिसर्स, बैंगलौर।
7. गोपाल, एस. जवाहरलाल नेहरूः ए बॉयोग्राफी, वोल्यूम, आई, जौनाथन केप, लंदन।
8. नंदा, बी. आर. महात्मा गांधीः ए बॉयोग्राफी, जियोग्री अलिन एण्ड अनवीन, लंदन।
9. मेहरोत्रा, एस. आर. इमरजेंसी ऑफ इंडिया नेशनल कांग्रेस, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।
10. प्रधान, जी.पी. एण्ड भागवत, ए.के. लोकमान्य तिलकः ए बॉयोग्राफी जयको पब्लिसिंग हाउस, बम्बई।
11. सरकार, सुमित द स्वदेशी मोभमेन्ट इन बंगाल 1903–1908, पिपुल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।
12. बोस, सुभाष, द इंडियन स्ट्रगल, एशिया पब्लिसिंग हाउस, कलकत्ता।
13. द कैमुयल प्रोब्लमः रिपोर्ट ऑफ द कानपुर रिओटस इनक्वायरी कमिटी, 1931, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली